यमुना को प्रणाम, वनवासियों का प्रेम

चौपाई :

*** पुनि सियँ राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी॥ चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥1॥

भावार्थ:

फिर सीताजी, श्री रामजी और लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर यमुनाजी को पुनः प्रणाम किया और सूर्यकन्या यमुनाजी की बड़ाई करते हुए सीताजी सहित दोनों भाई प्रसन्नतापूर्वक आगे चले॥1॥

*** पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥ राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें॥2॥

भावार्थ:

रास्ते में जाते हुए उन्हें अनेकों यात्री मिलते हैं। वे दोनों भाइयों को देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अंगों में राज चिह्न देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच होता है॥2॥

*** मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ॥ अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥3॥

भावार्थ:

(ऐसे राजचिह्नों के होते हुए भी) तुम लोग रास्ते में पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझ में आता है कि ज्योतिष शास्त्र झूठा ही है। भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ों का दुर्गम रास्ता है। तिस पर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है॥3॥

*** करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥ जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई॥4॥

भावार्थ:

हाथी और सिंहों से भरा यह भयानक वन देखा तक नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप जहाँ तक जाएँगे, वहाँ तक पहुँचाकर, फिर आपको प्रणाम करके हम लौट आवेंगे॥4॥

दोहा :

*** एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन। कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन॥112॥

भावार्थ:

इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकित शरीर हो और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरकर पूछते हैं, किन्तु कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्रजी कोमलविनययुक्त वचन कहकर उन्हें लौटा देते हैं॥112॥

चौपाई :

*** जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥ केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥1॥

भावार्थ:

जो गाँव और पुरवे रास्ते में बसे हैं, नागों और देवताओं के नगर उनको देखकर प्रशंसा पूर्वक ईर्षा करते और ललचाते हुए कहते हैं कि किस पुण्यवान् ने किस शुभ घड़ी में इनको बसाया था, जो आज ये इतने धन्य और पुण्यमय तथा परम सुंदर हो रहे हैं॥1॥

*** जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥ पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहि सराहहिं सुरपुरबासी॥2॥

भावार्थ:

जहाँ-जहाँ श्री रामचन्द्रजी के चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्द्र की पुरी अमरावती भी नहीं है। रास्ते के समीप बसने वाले भी बड़े पुण्यात्मा हैं- स्वर्ग में रहने वाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं-॥2॥

*** जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनस्यामहि॥ जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं॥3॥

भावार्थ:

जो नेत्र भरकर सीताजी और लक्ष्मणजी सहित घनश्याम श्री रामजी के दर्शन करते हैं, जिन तालाबों और नदियों में श्री रामजी स्नान कर लेते हैं, देवसरोवर और देवनदियाँ भी उनकी बड़ाई करती हैं॥3॥

*** जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥ परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥4॥

भावार्थ:

जिस वृक्ष के नीचे प्रभु जा बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं। श्री रामचन्द्रजी के चरणकमलों की रज का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है॥4॥

दोहा :

*** छाँह करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं। देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥113॥

भावार्थ:

रास्ते में बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियों को देखते हुए श्री रामजी रास्ते में चले जा रहे हैं॥113॥

चौपाई :

*** सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥ सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी।

चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी॥1॥
भावार्थ:
सीताजी और लक्ष्मणजी सहित श्री रघुनाथजी जब किसी गाँव के पास जा निकलते हैं, तब उनका आना सुनते ही बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपने घर और काम-काज को भूलकर तुरंत उन्हें देखने के लिए चल देते हैं॥1॥
*** राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥ सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥2॥
भावार्थ:
श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी का रूप देखकर, नेत्रों का (परम) फल पाकर वे सुखी होते हैं। दोनों भाइयों को देखकर सब प्रेमानन्द में मग्न हो गए। उनके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गए॥2॥
*** बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥ एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥3॥
भावार्थ:
उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती। मानो दरिद्रों ने चिन्तामणि की ढेरी पा ली हो। वे एक-एक को पुकारकर सीख देते हैं कि इसी क्षण नेत्रों का लाभ ले लो॥3॥
*** रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥ एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥4॥
भावार्थ:
कोई श्री रामचन्द्रजी को देखकर ऐसे अनुराग में भर गए हैं कि वे उन्हें देखते हुए उनके साथ लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्र मार्ग से उनकी छबि को हृदय में लाकर शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणी से शिथिल हो जाते हैं (अर्थात् उनके शरीर, मन और वाणी का व्यवहार बंद हो जाता है)॥4॥
दोहा :
*** एक देखि बट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात। कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिंकि प्रात॥114॥
भावार्थ:
कोई बड़ की सुंदर छाया देखकर, वहाँ नरम घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि क्षण भर यहाँ बैठकर थकावट मिटा लीजिए। फिर चाहे अभी चले जाइएगा, चाहे सबेरे॥114॥
चौपाई :
*** एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥ सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी॥1॥
भावार्थ:

कोई घड़ा भरकर पानी ले आते हैं और कोमल वाणी से कहते हैं- नाथ! आचमन तो कर लीजिए। उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका अत्यन्त प्रेम देखकर दयालु और परम सुशील श्री रामचन्द्रजी ने-॥1॥

*** जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं॥ मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥2॥

भावार्थ:

मन में सीताजी को थकी हुई जानकर घड़ी भर बड़ की छाया में विश्राम किया।स्त्री-पुरुष आनंदित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रूप ने उनके नेत्र और मनों को लुभा लिया है॥2॥

*** एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चंद चकोरा॥ तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥3॥

भावार्थ:

सब लोग टकटकी लगाए श्री रामचन्द्रजी के मुख चन्द्र को चकोर की तरह (तन्मय होकर) देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। श्री रामजी का नवीन तमाल वृक्ष के रंग का (श्याम) शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवों के मन मोहित हो जाते हैं॥3॥

*** दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥ मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥4॥

भावार्थ:

बिजली के से रंग के लक्ष्मणजी बहुत ही भले मालूम होते हैं। वे नख से शिखा तक सुंदर हैं और मन को बहुत भातेहैं। दोनों मुनियों के (वल्कल आदि) वस्त्र पहने हैं और कमर में तरकस कसे हुए हैं। कमल के समान हाथों में धनुषबाण शोभित हो रहे हैं॥4॥

दोहा :

*** जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल। सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥115॥

भावार्थ:

उनके सिरों पर सुंदर जटाओं के मुकुट हैं, वक्षः स्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं और शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुंदर मुखों पर पसीने की बूँदों का समूह शोभित हो रहा है॥115॥

चौपाई :

*** बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥ राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥1॥

भावार्थ:

उस मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि शोभा बहुत अधिक है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी की सुंदरता को सब लोग मन, चित्त और बुद्धि तीनों को

लगाकर देख रहे हैं॥1॥

*** थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से॥ सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥2॥

भावार्थ:

प्रेम के प्यासे (वे गाँवों के) स्त्री-पुरुष (इनके सौंदर्य-माधुर्य की छटा देखकर) ऐसे थकित रह गए जैसे दीपक को देखकर हिरनी और हिरन (निस्तब्ध रह जाते हैं)! गाँवों की स्त्रियाँ सीताजी के पास जाती हैं, परन्तु अत्यन्त स्नेह के कारण पूछते सकुचाती हैं॥2॥

*** बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥ राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं॥3॥

भावार्थ:

बार-बार सब उनके पाँव लगतीं और सहज ही सीधे-सादे कोमल वचन कहती हैं- हे राजकुमारी! हम विनती करती (कुछ निवेदन करना चाहती) हैं, परन्तु स्त्री स्वभाव के कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं॥3॥

*** स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥ राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने॥4॥

भावार्थ:

हे स्वामिनी! हमारी ढिठाई क्षमा कीजिएगा और हमको गँवारी जानकर बुरा न मानिएगा। ये दोनों राजकुमार स्वभाव से ही लावण्यमय (परम सुंदर) हैं। मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्ण ने कांति इन्हीं से पाई है (अर्थात मरकतमणि में और स्वर्ण में जो हरित और स्वर्ण वर्ण की आभा है, वह इनकी हरिताभ नील और स्वर्ण कान्ति के एक कण के बराबर भी नहीं है।)॥4॥

दोहा :

*** स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन। सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥116॥

भावार्थ:

श्याम और गौर वर्ण है, सुंदर किशोर अवस्था है, दोनों ही परम सुंदर और शोभा के धाम हैं। शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान इनके मुख और शरद ऋतु के कमल के समान इनके नेत्र हैं॥116॥

मासपारायण, सोलहवाँ विश्राम नवाह्नपारायण, चौथा विश्राम

चौपाई :

*** कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥ सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी॥1॥

भावार्थ:

हे सुमुखि! कहो तो अपनी सुंदरता से करोड़ों कामदेवों को लजाने वाले ये तुम्हारे कौन हैं? उनकी ऐसी प्रेममयी सुंदर वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गईं और मन ही मन मुस्कुराईं॥1॥

*** तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥ सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥2॥

भावार्थ:

उत्तम (गौर) वर्णवाली सीताजी उनको देखकर (संकोचवश) पृथ्वी की ओर देखती हैं। वे दोनों ओर के संकोच से सकुचा रही हैं (अर्थात न बताने में ग्राम की स्त्रियों को दुःख होने का संकोच है और बताने में लज्जा रूप संकोच)। हिरन के बच्चे के सदृश नेत्र वाली और कोकिल की सी वाणी वाली सीताजी सकुचाकर प्रेम सहित मधुर वचन बोलीं-॥2॥

*** सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥ बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥3॥

भावार्थ:

ये जो सहज स्वभाव, सुंदर और गोरे शरीर के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है, ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीताजी ने (लज्जावश) अपने चन्द्रमुख को आँचल से ढँककर और प्रियतम (श्री रामजी) की ओर निहारकर भौंहें टेढ़ी करके,॥3॥

*** खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥ भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं॥4॥

भावार्थ:

खंजन पक्षी के से सुंदर नेत्रों को तिरछा करके सीताजी ने इशारे से उन्हें कहा कि ये (श्री रामचन्द्रजी) मेरे पति हैं। यह जानकर गाँव की सब युवती स्त्रियाँ इस प्रकार आनंदित हुईं मानो कंगालों ने धन की राशियाँ लूट ली हों॥4॥

दोहा :

*** अति सप्रेम सिय पाँय परि बहु बिधि देहिं असीस। सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस॥117

भावार्थ:

वे अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पैरों पड़कर बहुत प्रकार से आशीष देती हैं (शुभ कामना करती हैं), कि जब तक शेषजी के सिर पर पृथ्वी रहे, तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो,॥117॥

चौपाई :

*** पारबती सम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥ पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी॥1॥

भावार्थ:

और पार्वतीजी के समान अपने पति की प्यारी होओ। हे देवी! हम पर कृपा न छोड़ना (बनाए रखना)। हम बार-बार हाथ जोड़कर विनती करती हैं, जिसमें आप फिर इसी रास्ते लौटें,॥1॥

*** दरसनु देब जानि निज दासी। लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी॥ मधुर बचन कहि कहि परितोषीं।

जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं॥2॥

भावार्थ:

और हमें अपनी दासी जानकर दर्शन दें। सीताजी ने उन सबको प्रेम की प्यासी देखा और मधुर वचन कह-कहकर उनका भलीभाँति संतोष किया। मानो चाँदनी ने कुमुदिनियों को खिलाकर पुष्ट कर दिया हो॥2॥

*** तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥ सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥3॥

भावार्थ:

उसी समय श्री रामचन्द्रजी का रुख जानकर लक्ष्मणजी ने कोमल वाणी से लोगों से रास्ता पूछा। यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुःखी हो गए। उनके शरीर पुलकित हो गए और नेत्रों में (वियोग की सम्भावना से प्रेम का) जल भर आया॥3॥

*** मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥ समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥4॥

भावार्थ:

उनका आनंद मिट गया और मन ऐसे उदास हो गए मानो विधाता दी हुई सम्पत्ति छीने लेता हो। कर्म की गति समझकर उन्होंने धैर्य धारण किया और अच्छी तरह निर्णय करके सुगम मार्ग बतला दिया॥4॥

दोहा :

*** लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ। फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ॥118॥

भावार्थ:

तब लक्ष्मणजी और जानकीजी सहित श्री रघुनाथजी ने गमन किया और सब लोगों को प्रिय वचन कहकर लौटाया, किन्तु उनके मनों को अपने साथ ही लगा लिया॥118॥

चौपाई :

*** फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं॥ सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥1॥

भावार्थ:

लौटते हुए वे स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन ही मन दैव को दोष देते हैं।परस्पर (बड़े ही) विषाद के साथ कहते हैं कि विधाता के सभी काम उलटे हैं॥1॥

*** निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥ रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा॥2॥

भावार्थ:

वह विधाता बिल्कुल निरंकुश (स्वतंत्र), निर्दय और निडर है, जिसने चन्द्रमा को रोगी (घटने-बढ़ने वाला) और कलंकी बनाया, कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारा बनाया। उसी ने इन राजकुमारों को वन में भेजा है॥2॥

*** जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥ ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥3॥

भावार्थ:

जब विधाता ने इनको वनवास दिया है, तब उसने भोग-विलास व्यर्थ ही बनाए। जब ये बिना जूते के (नंगे ही पैरों) रास्ते में चल रहे हैं, तब विधाता ने अनेकों वाहन (सवारियाँ) व्यर्थ ही रचे॥3॥

*** ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥ तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥4॥

भावार्थ:

जब ये कुश और पत्ते बिछाकर जमीन पर ही पड़े रहते हैं, तब विधाता सुंदर सेज (पलंग और बिछौने) किसलिए बनाता है? विधाता ने जब इनको बड़े-बड़े पेड़ों (के नीचे) का निवास दिया, तब उज्ज्वल महलों को बना-बनाकर उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया॥4॥

दोहा :

*** जौं ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार। बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार॥119॥

भावार्थ:

जो ये सुंदर और अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियों के (वल्कल) वस्त्र पहनते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार (विधाता) ने भाँति-भाँति के गहने और कपड़े वृथा ही बनाए॥119॥

चौपाई :

*** जौं ए कंदमूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥ एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए॥1॥

भावार्थ:

जो ये कन्द, मूल, फल खाते हैं, तो जगत में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। कोई एक कहते हैं- ये स्वभाव से ही सुंदर हैं (इनका सौंदर्य-माधुर्य नित्य और स्वाभाविक है)। ये अपने-आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्मा के बनाए नहीं हैं॥1॥

*** जहँ लगिबेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥ देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥2॥

भावार्थ:

हमारे कानों, नेत्रों और मन के द्वारा अनुभव में आने वाली विधाता की करनी को जहाँ तक वेदों ने वर्णन करके कहा है, वहाँ तक चौदहों लोकों में ढूँढ देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं?

(कहीं भी नहीं हैं, इसी से सिद्ध है कि ये विधाता के चौदहों लोकों से अलग हैं और अपनी महिमा से ही आप निर्मित हुए हैं)॥2॥

*** इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥ कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥3॥

भावार्थ:

इन्हें देखकर विधाता का मन अनुरक्त (मुग्ध) हो गया, तब वह भी इन्हीं की उपमा के योग्य दूसरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा। उसने बहुत परिश्रम किया, परन्तु कोई उसकी अटकल में ही नहीं आए (पूरे नहीं उतरे)। इसी ईर्षा के मारे उसने इनको जंगल में लाकर छिपा दिया है॥3॥

*** एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥ ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥4॥

भावार्थ:

कोई एक कहते हैं- हम बहुत नहीं जानते। हाँ, अपने को परम धन्य अवश्य मानते हैं (जो इनके दर्शन कर रहे हैं) और हमारी समझ में वे भी बड़े पुण्यवान हैं, जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे॥4॥

दोहा :

*** एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर। किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥120॥

भावार्थ:

इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर सब नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर लेते हैं और कहते हैं कि ये अत्यन्त सुकुमार शरीर वाले दुर्गम (कठिन) मार्ग में कैसे चलेंगे॥120॥

चौपाई :

*** नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकईं साँझ समय जनु सोहीं॥ मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी॥1॥

भावार्थ:

स्त्रियाँ स्नेहवश विकल हो जाती हैं। मानो संध्या के समय चकवी (भावी वियोग की पीड़ा से) सोह रही हो। (दुःखी हो रही हो)। इनके चरणकमलों को कोमल तथा मार्ग को कठोर जानकर वे व्यथित हृदय से उत्तम वाणी कहती हैं-॥1॥

*** परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥ जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥2॥

भावार्थ:

इनके कोमल और लाल-लाल चरणों (तलवों) को छूते ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा जाती है, जैसे हमारे हृदय सकुचा रहे हैं। जगदीश्वर ने यदि इन्हें वनवास ही दिया, तो सारे रास्ते को पुष्पमय क्यों

नहीं बना दिया?॥2॥

*** जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥ जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥3॥

भावार्थ:

यदि ब्रह्मा से माँगे मिले तो हे सखी! (हम तो उनसे माँगकर) इन्हें अपनी आँखों में ही रखें! जो स्त्री-पुरुष इस अवसर पर नहीं आए, वे श्री सीतारामजी को नहीं देख सके॥3॥

*** सुनि सुरूपु बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि भाई॥ समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई॥4॥

भावार्थ:

उनके सौंदर्य को सुनकर वे व्याकुल होकर पूछते हैं कि भाई! अब तक वे कहाँ तक गए होंगे? और जो समर्थ हैं, वे दौड़ते हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और जन्मका परम फल पाकर, विशेष आनंदित होकर लौटते हैं॥4॥

दोहा :

*** अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं। होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं॥121॥

भावार्थ:

(गर्भवती, प्रसूता आदि) अबला स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े (दर्शन न पाने से) हाथ मलते और पछताते हैं। इस प्रकार जहाँ-जहाँ श्री रामचन्द्रजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेम के वश में हो जाते हैं॥121॥

चौपाई :

*** गाँव गाँव अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥ जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं॥1॥

भावार्थ:

सूर्यकुल रूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा स्वरूप श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कर गाँव-गाँव में ऐसा ही आनंद हो रहा है, जो लोग (वनवास दिए जाने का) कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी (दशरथ-कैकेयी) को दोष लगाते हैं॥1॥

*** कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू॥ कहहिं परसपर लोग लोगाईं। बातें सरल सनेह सुहाईं॥2॥

भावार्थ:

कोई एक कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रों का लाभ दिया। स्त्री-पुरुष सभी आपस में सीधी, स्नेहभरी सुंदर बातें कह रहे हैं॥2॥

*** ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगरु जहाँ तें आए॥ धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ। जहँ-जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ॥3॥

भावार्थ:

(कहते हैं-) वे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है, जहाँ से ये आए हैं। वह देश, पर्वत, वन और गाँव धन्य है और वही स्थान धन्य है, जहाँ-जहाँ ये जाते हैं॥3॥

*** सुखु पायउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि केसब भाँति सनेही॥ राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥4॥

भावार्थ:

ब्रह्मा ने उसी को रचकर सुख पाया है, जिसके ये (श्री रामचन्द्रजी) सब प्रकार से स्नेही हैं। पथिक रूप श्री राम-लक्ष्मण की सुंदर कथा सारे रास्ते और जंगल में छा गई है॥4॥

दोहा :

*** एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत। जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत॥122॥

भावार्थ:

रघुकुल रूपी कमल को खिलाने वाले सूर्य श्री रामचन्द्रजी इस प्रकार मार्ग के लोगों को सुख देते हुए सीताजी और लक्ष्मणजी सहित वन को देखते हुए चले जा रहेहैं॥122॥

चौपाई :

*** आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥ उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥1॥

भावार्थ:

आगे श्री रामजी हैं, पीछे लक्ष्मणजी सुशोभित हैं। तपस्वियों के वेष बनाए दोनों बड़ी ही शोभा पा रहे हैं। दोनों के बीच में सीताजी कैसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया!॥1॥

*** बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥ उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥2॥

भावार्थ:

फिर जैसी छबि मेरे मन में बस रही है, उसको कहता हूँ- मानो वसंत ऋतु और कामदेव के बीच में रति (कामेदव की स्त्री) शोभित हो। फिर अपने हृदय में खोजकर उपमा कहता हूँ कि मानो बुध (चंद्रमा के पुत्र) और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी (चन्द्रमा की स्त्री) सोह रही हो॥2॥

*** प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥ सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥3॥

भावार्थ:

प्रभु श्री रामचन्द्रजी के (जमीन पर अंकित होने वाले दोनों) चरण चिह्नों के बीच-बीच में पैर रखती हुई सीताजी (कहीं भगवान के चरण चिह्नों पर पैर न टिक जाए इस बात से) डरती हुईं

मार्ग में चल रही हैं और लक्ष्मणजी (मर्यादा की रक्षा के लिए) सीताजी और श्री रामचन्द्रजी दोनों के चरण चिह्नों को बचाते हुए दाहिने रखकर रास्ता चल रहे हैं॥3॥

*** राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥ खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी की सुंदर प्रीति वाणी का विषय नहीं है (अर्थात अनिर्वचनीय है), अतः वह कैसे कही जा सकती है? पक्षी और पशु भी उस छबि को देखकर (प्रेमानंद में) मग्न हो जाते हैं। पथिक रूप श्री रामचन्द्रजी ने उनके भी चित्त चुरा लिए हैं॥4॥

दोहा :

*** जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ। भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥123॥

भावार्थ:

प्यारे पथिक सीताजी सहित दोनों भाइयों को जिन-जिन लोगों ने देखा, उन्होंने भव का अगम मार्ग (जन्म-मृत्यु रूपी संसार में भटकने का भयानक मार्ग) बिना ही परिश्रम आनंद के साथ तय कर लिया (अर्थात वे आवागमन के चक्र से सहज ही छूटकर मुक्त हो गए)॥123॥